SHRI K. R. GANESH: I beg to move:

"That the Bill further to amend the Income-tax Act, 1961, the Wealth-tax Act, 1957, the Gift-tax Act, 1958 and the Companies (Profits) Surtax Act, 1964 and to provide for certain related matters, be referred to a Select Committee consisting of 30 members, namely:— Shri Bhagwat Jha Azad, Shri Onkar Lal Berwa, Shri Raghunandan Lal Bhatia, Shri M. Bheeshmadev, Shri G. Bhuvarahan, Shri Narendra Singh Bisht, Shri Somnath Chatterjee, Shri Y. B. Chavan, Shri S. R. Damani, Shri B. K. Daschowdhury, Shri D. D. Desai, Smt. Marjorie Godfrey, Shri Dinesh Chandra Goswami, Shri Samar Guha, Shri Shyam Sunder Mohapatra, Shri Kartik Oraon, Shri D. K. Panda, Shri H. M. Patel, Shri Ramji Ram, Shri N. K. P. Salve, Shri N. K. Sanghi, Shri Vasant Sathe, Shrimati Savitri Shyam, Shri Era Sezhiyan, Shri C. K. Jaffer Sharief, Shri Shiv Kumar Shastri, Shri Somchand Solanki, Shri Maddi Sudarsanam, Shri K. P. Unnikrishnan; and Shri K. R. Ganesh with instructions to report by the last day of the first week of the next session."

MR. DEPUTY-SPEAKER: The question is:

"That the Bill further to amend the Income-tax Act, 1961, the Wealth tax Act, 1957, the Gift-tax Act, 1958 and the Companies (Profits) Surtax Act, 1964 and to provide for certain related matters, be referred to a Select Committee consisting of 30 members, namely:— Shri Bhagwat Jha Azad, Shri Onkar Lal Berwa, Shri Raghunandan Lal Bhatia, Shri M. Bheeshmadev, Shri G. Bhuvarahan, Shri Narendra Singh Bisht, Shri Somnath Chatterjee, Shri Y. B. Chavan, Shri S. R. Damani, Shri B. K. Daschowdhury, Shri D. D. Desai, Smt. Marjorie Godfrey, Shri Dinesh Chandra Goswami, Shri Samar Guha, Shri Shyam Sunder Mohapatra, Shri Kartik Oraon, Shri D. K. Panda, Shri H. M. Patel, Shri Ramji Ram, Shri N. K. P. Salve, Shri N. K. Sanghi, Shri Vasant Sathe, Shrimati Savitri Shyam, Shri Era Sezhiyan, Shri C. K. Jaffer Sharief, Shri Shiv Kumar Shastri, Shri Somchand Solanki, Shri Maddi Sudarsanam, Shri K. P. Unnikrishnan; and Shri K. R. Ganesh with instructions to report by the last day of the first week of the next session."

The motion was adopted.

14.22 hrs.

MOTION RE: REPORTS OF THE UNIVERSITY GRANTS COMMISSION FOR 1970-71 AND 1971-72—*Contd.*

MR. DEPUTY-SPEAKER: Now we resume discussion on the following motion moved by Prof. S. Nurul Hasan on the 19th November, 1973, namely:

"That this House do consider the Annual Reports of the University Grants Commission for the years 1970-71 and 1971-72, laid on the Table of the House on the 1st June, 1972 and 13th August, 1973, respectively."

Shri Anant Prasad Dhusia was on his legs on the last occasion. He may continue his speech.

श्री अनन्त प्रसाद घूसिया (बस्ती): उपाध्यक्ष महोदय, मैं 20 तारीख को यूनिवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन के सम्बन्ध में जापान तथा कुछ पश्चिमी देशों के प्रोफेसरों के बारे में कह रहा था। मैंने जापान के प्रोफेसर्स के बारे में कहा था कि अगर वे एक मर्तबा किसी यूनिवर्सिटी में लग जाते हैं, तो फिर जीवन भर वे उसी में रिसर्च करते और कराते हैं और किसी लालच की वजह से किसी दूसरी जगह नहीं जाते हैं। हमारे यहां की दशा उससे विपरीत है। जापान और पश्चिमी देशों में टेकनालोजी और साइंस की जितनी तरक्की हुई है, उसका सबसे अधिक श्रेय वहां के रिसर्च स्कालर्ज और प्रोफेसर्ज को ही है। उन डिवोटिड आदमियों ने

बड़े अच्छे ढंग से विश्वविद्यालयों में रिसर्च की है ।

लेकिन इसकी तुलना में हमारे यहां यह स्थिति है कि प्रोफेसर्स एक विश्वविद्यालय में लगे, दो साल वहां रहे और तीसरे साल किसी दूसरे विश्वविद्यालय में चले गये । हमारे यहां एक्सपर्टस की एडवाइस की कमी नहीं है । सबसे बड़ी कमी यह है कि गवर्नमेंट तथा कमीशन दोनों ने इन बातों पर सीरियसली विचार नहीं किया है । अगर उन्होंने ऐसा किया होता, तो शायद यह दशा न होती ।

हमारे देश में हर एक यूनिवर्सिटी और बड़े कालेजों में स्टूडेंट्स यूनियन्ज का बड़ा बोलबाला है । कहा जाता है कि उन यूनियन्ज के जरिये से विद्यार्थियों को डेमोक्रेटिक शिक्षा मिलती है । पर आप को मालूम होगा कि जब किसी भी विश्वविद्यालय या बड़े कालेज में स्टूडेंट्स यूनियन का इलेक्शन होता है, तो वहां इस देश के सभी राजनैतिक झंडे दिखाई देते हैं । उन यूनियनों के इलेक्शन में लाखों रुपये खर्च होते हैं । वह रुपया उनको कौन देता है? स्टुडेंट्स अपने घर से रुपया नहीं लाते हैं, बल्कि राजनैतिक पार्टियों के आदमी उन को रुपया देते हैं । इसका परिणाम यह होता है कि हर एक जगह मुकदमे, प्रदर्शन, आगजनी, गोलीकाण्ड और अनेक इसी तरह के काम होते हैं ।

सन् 1964 में कितने प्रदर्शन हुए इसके बारे में मैं क्या कहूं । 1964 में ही प्रदर्शनों की बुनियाद पड़ी है । उस साल 700 प्रदर्शन हुए । उनमें 113 हिंसात्मक हुए । 1966 में 2002 हुए जिन में 430 हिंसात्मक थे 1966 के बाद साल की बात तो छोड़ दें हर महीने किसी युनिवर्सिटी में कितनी ही जगह और फसाद हुए उनकी गिनती नहीं और उसका परिणाम यह हुआ कि हमारी वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली हमारे इन शिक्षण संस्थाओं के हिंसा और उपद्रवों की ओर ले जा रही है । इसमें टीचर्ज, प्रोफेसस, एडमिनिस्टेटर्ज, विद्यार्थी और मैनेजमेंट सभी लिप्त हैं । कोई अलग नहीं है ।

डिग्री कालेजों और यूनिवर्सिटी के बारे में भी मैं कुछ कहना चाहता हूं । इन सभी में पैसे वाले राजनीतिज्ञों का बोलबाला है जिन्होंने एक न एक ढंग से उन पर अपना अधिकार जमा रखा है । इसका परिणाम यह हुआ है कि जो टीचर्ज, प्रोफेसर्स और अच्छे अच्छे विद्वान लोग हैं इनको ये राजनीतिज्ञ लोग जा कर शिक्षा देते हैं । अब मौलिक प्रश्न यह उठता है कि उन विद्यार्थियों को टीचर्ज उपदेश दें या ये पैसे वाले राजनीतिज्ञ । पैसे वाले राजनीतिज्ञ लोग जो वहां जाते हैं उसके कारण शिक्षा सारी हमारी दिन पर दिन दूषित होती जा रही है । सरकार से और कमिशन से मैं निवेदन करना चाहता हूं कि इस चीज को वह रोके अन्यथा हमारी शिक्षा बद से बदतर होती जाएगी ।

श्री राम शेखर प्रसाद सिंह (छपरा) : उपाध्यक्ष महोदय, आज दो दिनों से विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की रिपोर्ट के ऊपर इस सदन में बहस चल रही है । इस में कितने ही प्रकांड विद्वान लोगों ने जिनका शिक्षा से काफी सम्पर्क रहा है और जिन लोगों ने शिक्षा विभाग की सेवा की है उन्होने अपने विचार व्यक्त किये हैं । मैं कुछ उस तरीके के विचार नहीं रखूंगा बल्कि आम जनता की हैसियत से अपना विचार रखूंगा जो शिक्षा के बारे में साधारण लोगों के विचार हैं और किस तरीके से अनुदान का उपयोग जनहित के काम के लिए होना चाहिए उसके बारे में तथा गार्जियन लोगों के जो विचार हैं इस विषय में, इस दृष्टिकोण से भी अपना विचार रखना चाहता हूं ।

[श्री राम सेखर प्रसाद सिंह]

यह बात सही है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद और पिछले दस वर्षों में देश में विश्वविद्यालयों की बहुत वृद्धि हुई है। बहुत से विश्वविद्यालय खुले हुए हैं और कालेज स्कूल और विद्यार्थियों की संख्या में भी तिगुनी चौगुनी वृद्धि हुई है। लेकिन जिस अनुपात में विश्वविद्यालय खोले गये हैं, उसी अनुपात में शिक्षा का स्तर भी नीचे उतरता और गिरता गया है। आज के जो स्नातक बी० ए० पास कर के निकलते हैं या और भी जो उच्च शिक्षा प्राप्त लोग होते हैं, जिस शिक्षा की सनद उन्हें मिलती है, उस से उन को योग्यता में काफी कमी होती है जो कि आज से दस वर्ष पहले नहीं थी।

यह बात सही है कि शिक्षा विभाग और शिक्षा के प्रसार और प्रचार का काम राज्य सरकारों के जिम्मे है और राज्य सरकारें मुख्यत: उस के लिए जबाबदेह हैं। लेकिन भारत सरकार के यदि कुछ विश्वविद्यालय हैं और भारत सरकार भी कुछ विश्व-विद्यालयों को सीधे रूप में चलाती है, जिन को सेंट्रल यूनिवर्सिटी कहते हैं। उस में भी आज तक कोई इस किस्म का सुधार नहीं है—उन्हें आदेश विश्व-विद्यालय होना चाहिए था जो देश के दूसरे विश्व-विद्यालय का नेतृत्व कर सके और सभी उच्च कोटि की शिक्षा का प्रसारण कर सके, तथा ऐसे योग्य व्यक्ति पैदा कर सकें जिसका कि अनुसरण और दूसरे विश्व-विद्यालय जो राज्य सरकारों के जिम्मे हैं वह करें। लेकिन वह नहीं हो पाया है। और उनकी स्थिति सोचनीय है।

मैं दो विश्व-विद्यालयों का जिक्र करना चाहता हूं। आप को पता होगा कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के पहले दो विश्व-विद्यालय देश में प्रमुख माने जाते थे एक अलीगढ़ मुस्लिम विश्व-विद्यालय और दूसरा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय। इन दोनों विश्व-विद्यालयों की स्थापना देश के दो महान विभूतियों ने की थी। उन लोगों के एक अपने लक्ष्य थे। लेकिन मैं ऐसा मानता हूं कि आज उन के लक्ष्य से ये विश्वविद्यालय हटते जा रहे हैं और हमारी सरकार उस दृष्टि-कोण को पूरा करने में असमर्थ है।

अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के विषय में एक संशोधन विधेयक कानून को सरकार ने जिस तत्परता से मंजूरी दी है उस से इस बात का प्रमाण मिलता है कि सरकार न तो इस विश्व-विद्यालय के ऐतिहासिक चरित्र में कोई परिवर्तन करना चाहती है न विश्वविद्यालय की आंतरिक स्वायत्तता में ही हस्तक्षेप करना चाहती है। सरकार ने जिस पवित्र भावना से उस संशोधन को मंजूरी दी है उस के लिए सरकार और शिक्षा मंत्री बधाई के पात्र हैं। उस विश्व-विद्यालय के उत्थान और उस की प्रगति के लिए कुछ एक सम्प्रदाय वाले लोग आगे आते हैं इसीलिए उन की बात को स्वीकार न किया जाय क्योंकि वह किसी एक साम्प्रदाय के हैं, वह ठीक नहीं है। हम को तो उस उच्च आदेश और उस उच्च भावना को लेकर चलना चाहिए जिस को लेकर इस विश्वविद्यालय की स्थापना हुई थी और मेरा विश्वास है कि हमारे माननीय मंत्री महोदय जो शिक्षा के महान पंडित रहे हैं, शिक्षा विभाग से काफी जिनका सम्पर्क रहा है, वह इस विषय में उदारतापूर्वक काम करेंगे तथा इस विश्व-विद्यालय की उन्नति के लिए जल्दी से जल्दी हाथ फैलाएंगे। ताकि वह अपनी पुरानी गरिमा को प्राप्त करले।

यही बात काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के बारे में भी कही जा सकती है। आज काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का रूप भिन्न भिन्न प्रकर के भिन्न भिन्न व्यक्ति प्रस्तुत करते है। कुछ कहते हैं कि यह एक क्षेत्रीय विश्वविद्यालय है, कुछ कहते हैं कि साम्प्रदायिक विश्वविद्यालय

है और कुछ अन्य अन्य प्रकार मे उसका रूप प्रस्तुत करते हैं। लेकिन जब वह विश्वविद्यालय आज पंडित मदन मोहन मालवीय जी ने स्थापित किया था और स्वतंत्रता संग्राम से पहले जब हम लोग इसके विद्यार्थी थे उस वक्त हम लोगों की समझ में आता ही नहीं था कि कभी भी इस विश्वविद्यालय को क्षेत्रीय विश्वविद्यालय के रूप में देखा जाएगा। उस समय डा० राधाकृष्णन जी वाइस कौंसलर थे, ग्रुरटु साहब प्रो० वाइसचांसलर थे, नाग साहब आर्ट्स कालेज में थे, जोशी साहब साइंस कालेज में थे। यानि भारत के भिन्न भिन्न भागों के बड़े बड़े विद्वानों को ला कर जिन मालवीय जी ने इस विश्वविद्यालय को महत्व दिया था। मैं चाहता हूं कि आप का चूंकि शिक्षा से काफी सम्पर्क रहा है आपने अपना जीवन इस काम में खपाया है, आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उस पुराने रूप को हम लोगों के सामने प्रस्तुत करदें जिससे कि पूज्य पंडित मदन मोहन मालवीय जी का स्वप्न पूरा हो सके और देश के लिए सच्चरित्र और देशभक्त नागरिक पैदा करने के लिए वह विश्वविद्यालय एक केन्द्र बनें ताकि देश का उत्थान हो सके।

अब मैं दो एक बातें स्थानीय कहना चाहता हूं। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के नवें पेज पर लिखा हुआ है कि बिहार विश्वविद्यालय में दो स्थान पर पोस्ट ग्रेजुएट की स्टडी खोलने के लिये अनुदान आयोग से सिफारिश की गई थी। एक छपरा के राजेन्द्र कालिज में और दूसरा दरभंगा सी० एम० कालिज में, दरभंगा में भी यह केन्द्र खुलना चाहिये, मैं उसका विरोध नहीं कर रहा हूं, लेकिन दरभंगा में यूनिर्वासिटी भी कायम हुई है, वहां और भी अच्छे अच्छे काम किये गये हैं। लेकिन स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद छपरा बहुत ही नेग्लेक्टेड रहा है। वह पूज्य राजेन्द्र बाबू का जन्म स्थान है, भारत के प्रथम राष्ट्रपति का जन्म स्थान है। अच्छा तो यह था कि उनके नाम पर वहां विश्वविद्यालय बनता, लेकिन विश्वविद्यालय बनाना तो दूर रहा, वहां पोस्ट -ग्रैजुएट कालेज खोलने में ही कठिनाई आ रही है। राजेन्द्र बाबू के नाम पर जो कालिज वहां बना हुआ है, उस में ही पोस्ट-ग्रेजुयेट स्टडीज का केन्द्र खोलने की सिफारिश की गई थी, लेकिन आपने उसको ठुकरा दिया। इसके बारे में नियम क्या हैं—मैं नहीं जानता। यूनीवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन किस तरह से पैसा बांटता है, इसका मेरे पास कोई हिसाब नहीं है और न मैं उसको जानना चाहता हूं। लेकिन यह बात जरूर है—हिसाब-किताब देखने से ऐसा लगता है—जो बैकवर्ड एरियाज़ है वहां शिक्षा का प्रचार-प्रसार कम हुआ है, उस पर ज्यादा खर्च हुआ हो, ऐसा कोई हिसाब उसमें नहीं है। जिन लोगों का एप्रोच यूनीवर्सिटी ग्रान्ट कमीशन से है उनको ज्यादा पैसा मिल जाता है—ऐसा मुझे अन्दाजा लगता है। मेरी बहुत जानकारी नजदीक से यूनीवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन या शिक्षण संस्थाओं से नहीं है।

उपाध्यक्ष महोदय, शिक्षा का उद्देश्य केवल लिट्रेरी ज्ञान कराना ही नहीं है, भाषाओं का ज्ञान कराना ही नहीं है, शिक्षा ऐसा होना चाहिये जिससे कि सच्चरित्र नागरिक बन सके और सच्चरित्र नागरिक बनने के लिये आवश्यक है कि जो शिक्षक शिक्षा देते हैं, उनका ऐसा चरित्र बने, जिसका अनुसरण और अनुकरण हमारे विद्यार्थी कर सकें। हम लोग जब विद्यार्थी थे—अपने प्रिन्सिपल या प्रोफेसर के चरण छूकर उनको प्रणाम करते थे, उनके सामने नहीं बढ़ते थे। लेकिन आज हम देखते हैं कि विद्यार्थी अपने प्रोफेसर लोगों में किस तरह का व्यवहार करते है। हमारे प्रोफेसर खुद ही विद्यार्थी को कहते हैं कि दूसरे प्रोफेसर को मारो और आपस में लड़ते रहते हैं। हमारे यूनीवर्सिटी ग्रान्ट्स कमीशन का ध्यान इस तरफ जाना चाहिये। जो प्रोफेसर और शिक्षक राजनीति से सम्बन्ध रखते हैं—वे साधारणतः पढ़ाने क

[श्री राम शेखर प्रसाद सिंह

काम बहुत कम कर पाते हैं, दूसरे कामों में लगे रहते हैं । मैं आपको एक बात बतलाना चाहता हूं--इसमें किसी पार्टी या दल की बात नहीं है--बिहार में जो प्रोफेसर असेम्बली के सदस्य बन गये हैं--वे दो तरफ से तनख्वाह उठाते हैं, यूनीर्वासिटी से उनको अलग तनख्वाह मिलती है और असेम्बली से अलग मिलती है--एक तरफ एक आदमी के लिए हमारे पास काम नहीं है, दूसरी तरफ एक ही व्यक्ति दो दो स्थानों से तनख्वाह उठाता है । इतना ही नहीं--यदि यूनीवर्सिटी की मीटिंग हुई तो उससे भी टी० ए० लिया और असेम्बली की हुई तो उससे भी टी० ए० लिया । मैं नहीं जानता कि इसके सम्बन्ध में कानून क्या है--लेकिन यह अनुचित है । अनुचित इसलिये है--जिनको देश का नेतृत्व करना है, वे ही अपना आचरण ऐसा रखेंगे जिसका प्रभाव उनके शिष्यों पर अच्छा नहीं पड़ता बल्कि छात्रों पर उसका असर बुरा पड़ता है, तो देश के लिए शिक्षा बेकार सिद्ध होगी, ऐसी हालत किसी एक स्थान पर ही नहीं है, सारे हिन्दुस्तान में यही हालत है । मैं चाहता हूं कि आप एक कमेटी बनायें--जिसमें विद्वान लोग भी हों, कानून के विशेषज्ञ भी हों, हमारे होरेन बाबू की तरह शिक्षा के अनुभवी और पुराने प्रकाण्ड विद्वान भी हों, उसमें आप प्रो० मधु दण्डवते को भी रखा जाये और वह कमेटी इसके बारे में सलाह दे, कि कहां तक दोहरी तनख्वाह लेना इस देश में ठीक है । और विचार करे कि इस किस्म की कार्यवाही से विद्यार्थियों पर, उनके चरित्र पर क्या प्रभाव पड़ेगा ।

आप कहते हैं कि आप समाजवादी तरीके से शिक्षा का प्रचार-प्रसार का काम करना चाहते हैं । आप देखते होंगे कि बहुत से लोग कामशियल इंस्टीट्यूशनं के तौर पर शिक्षा संस्था यें खोल लेते हैं और कहते हैं कि मैं सरकार से कुछ नहीं लेता । जैसे मैडिकल कालिजिज हैं, जहां हजारों रुपया लेकर विद्यार्थी को भर्ती किया जाता है, वे कहते हैं कि हम सरकार से पैसा नहीं लेते हैं । लेकिन क्या करते हैं-- सरकार से डिग्री लेते हैं, समाज में स्थान पाते हैं, कालिज के लिये जमीन एक्वायर होती है, ज्यादा दाम की जमीन उनको कम दाम पर मिलती है । और इस तरह से धनी-मानी लोगों को पढ़ने की सुविधा मिलती है, जो हजारों रुपया देने की क्षमता रखते हैं गरीबों को सुविधा नहीं मिलती है । आप कहते हैं कि गरीब-समाजवाद कायम करेंगे और सब को समान अवसर देंगे, लेकिन इस तरह से गरीब को समान अवसर नहीं मिलेंगे और धनी लोग ही ऐसी शिक्षा से लाभान्वित होंगे ।

मेरा अनुभव विद्वानों का अनुभव नहीं है मैंने जो दो-चार बातें आप के सामने रखी हैं, अपनी आंखों देख रखा है । अपने प्रदेश में तथा अन्य स्थानों पर शिक्षा की जो हालत देखी है, उनकी तरफ माननीय मंत्री जी का ध्यान दिलाया है । मैं उम्मीद करता हूं कि वे उस पर विचार करेंगे और जब कभी शिक्षा विभाग की अनुदानों की मांगों पर बहस का अवसर आएगा, इन बातों का उत्तर देंगे, इन बातों के बारे में उनकी क्या राय है ?

PROF. MADHU DANDAVATE (Rajapur): Mr. Deputy-Speaker Sir, as a university teacher, I feel the deepest involvement in participation in this debate on the UGC's reports for 1970-71 and 1971-72. The reports of the UGC that have been presented to us for discussion deal with grants to universities, centres of advanced study, assitance to colleges, programmes for teachers, programmes for students and international collaboration. It is my belief that these are the aspects which have been dealt with in the reports of the UGC. An integrated approach is urgently called for so that all the heads under which the reports have been prepared will be able to indicate substantial successes.

It has been indicated that the rate of increase of university students is 2.5 lakhs, which comes to about 30 per cent per year, and the Ministry expects 16 lakhs to join the university ranks in the course of the next five years. This rate of growth of the number of students belonging to the universities is only an illusory growth for the very simple reason that though the rate that has been indicated is correct, it is unbalanced growth.

The entire university life is today compartmentalised between the urban centres of education and the mofussil centres. If you look at the disbursal of the resources that have been allocated to the UGC you will find that major emphasis is laid on the development of universities in the urban areas to the detriment of the development of universities in the rural areas. This imbalance in our academic life will have to be completely eliminated. We find in places like Calcutta, Bombay and Madras universities which can rightly be called monster universities. I am using the word 'monster' in the context of the size and not in the context of the content of the universities. This particular disability or disparity has to be removed. Just as we have skyscrapers in the urban areas and hutments in the rural areas, similarly in big places like Calcutta, Bombay etc. we have huge universities or crowded universities which inevitably create the problem of so-called indiscipline, and on the other side we have got the rural universities where there is not adequate accommodation provided to the students and teachers and there is lack of facilities. This imbalance between the two sets of universities has to be completely removed.

Therefore, what is urgently called for is rationalisation of the expansion of our universities in terms of the size of the universities and the facilities that are needed for speedy as well as balanced growth of our universities.

There is no effective rapport between the teachers and the taught. This is missing to a very great extent especially in our universities, and this gives rise to the problem of student indiscipline. It is here that the root cause of indiscipline is to be traced. We find a lot of debate in this House on student indiscipline in the universities. But I feel that unfortunately it is an unbalanced debate which is going on.

As one who has spent 25 years of his precious life in the university, I can say with full confidence that if there is disturbance in a classroom, very often the responsibility has to be thrown on those who have not been able to establish a rapport with the students. If the students are convinced that while teaching the students, the teacher is throwing his heart and soul into the subject, it is our experience that even though the expression of the teacher is not adequate and he has no facility for expression, the students realise that there is an identification of the teacher with the subject and he is trying to put his entire heart into the subject and there is no disturbance in the classroom at all and there is no indiscipline at all. The so-called indiscipline is an external manifestation of so many internal malaise that exist in our university life. Universities are crowded, there are no adequate hostel facilities, there is no rapport between the teacher and the taught. In some of the inter-science classes I conducted as lecture classes, the number of students was 150-160 per class. This is as good or as bad as addressing a public meeting on a maidan. Of course, I did not do it at that level. But it is a fact that there is no rapport between the teacher and the student. In countries like Soviet Russia and the USA, there is a greater rapport between the student and the teacher. There the research faculties of the student get developed. The original thinking of the student can be discovered by the teacher and in this environment the students are also able to discover whether there is an element of originality in the teacher or not.

[Prof. Madhu Dandavate]

You will be surprised to know that in some countries like the US and USSR, promotions of teachers are not made merely on the basis of seniority as is sought to be done by some in the case of the judiciary. I am one of those who believe that in the fields of education and judiciary, it is not necessarily the seniormost who is always the most competent. Probably sometimes merit lies in the younger man. Therefore, in some foreign universities, there is a method by which a questionnaire is circulated among students in which they are asked whether they are able to get proper guidance from their teachers when they pose questions and explanations are given by the teachers. Thereby the originality of mind of the teacher is revealed and it is also known whether the teacher encourages the research faculty among the students. On the basis of that and also supported by the expert opinion of the teaching fraternity, promotions of teachers are made. Some such thing will have to be evolved here. Then the students also will have the feeling that they have a sense of participation. Only allowing a few representatives of the Union to sit as yes-men in the Councils does not give that sense of participation. This is a novel method of introducing a sense of participation.

As far as examination reform is concerned, there is a reference to it in the Report. I would like to remind this House about the recommendations of the Vice-Chancellors' conference made as early as April 1969. In those recommendations, the following things were said. They are very important. (1) Introduction of sessional work and internal assessment in the evaluation and grading of student performance; (2) Introduction of problem-oriented questions in place of information and memory-oriented questions; (3) holding of examinations in part, spacing them conveniently; (4) The semestor system should not imply fragmentation of courses; it should necessarily involve restructuring of courses so that the system provides opportunities for reviewing and modernising the syllabi.

There is one more aspect to which I would refer, which is not alluded to in the Report. That is the need to restructure our textbooks. Fortunately, our Minister of Education is a professor of history. Is he satisfied with the textbooks on history in this country? Is he satisfied with the method of teaching history in our country? History is being taught through our textbooks in the most biassed manner. We seem to be concerned with history only as a documentation of the bravery and heroism of men and women. The scientific attitude to history is completely lost sight of. I hardly come across textbooks on history at the university level in which the motivations of history are stressed, in which the scientific analysis of history is emphasised. Why history has moved in a particular direction in certain environmental conditions? These interpretations of history are completely lacking. In fact, the theory of history is completely missed. What we are told in history is merely a documentation of the achievements and failures of great men and great women. The entire orientation of textbooks on history will have to be changed. If the UGC does not undertake this responsibility, who else can? If you shove this responsibility on to some department of Government, in the rut of governmental functioning, perhaps even the textbooks will lose all their significance. Therefore, the UGC will have to undertake this task.

A word about revising and restructuring the syllabi. I would insist that there must be a greater degree of uniformity in the syllabi of various universities. Even today we find the mobility of inter-university life lost, mobility in terms of teachers and that in terms of students. If this inter-university mobility is lost, it is be-

cause a great amount of disparity exists between the syllabi of various universities. I do not want mechanisation but I want some sort of uniform attitude to the syllabi that are constructed in various universities so that if today I belong to the Bombay University and tomorrow if I move on to the Calcutta University and the next year to the Kerala University, I must not suffer as far as academic excellence is concerned, and therefore in the interests of academic excellence as well as mobility and free mobility of university life, it is necessary that a greater degree of uniformity in university syllabi is brought about.

I would like to say a word about the medium of instruction. Sir, I have been adopting on this particular aspect a point of view which is probably an unpopular point of view. At one extreme, the status quoists in the field of education want that English alone should continue as the medium of instruction, and they always say that science subjects cannot be taught adequately in the English language. On the contrary, my own view is, and this is borne by experience, that in literature a subtle distinction between words makes all the difference, but as far as science subjects are concerned, language converts itself into a non-language through the medium of symbols, through the medium of idiograms, through the medium of various formulae. Therefore, it is rather easier to teach the scientific subjects in terms of regional language or in terms of a national language like Hindi.

At one end, people want the status quoist attitude, that English should continue. At the other end, there is a growing feeling that the regional languages must be introduced in the universities. I am opposed to both these extreme points of view. I want greater stress to be given to all the Indian languages, and therefore, English has to go. As I said, I want inter-university mobility to be retained and in order to maintain inter-university mobility, I would prefer Hindustani or Hindi in the place of regional languages. In the north, Hindustani could be a better medium. There would be some difficulty in the south. But there is no difficulty as far as a number of States like Gujarat, Maharashtra, Uttar Pradesh, Bihar and other States are concerned. Therefore, in the place of English, Hindustani can come, and we should avoid regional languages at the university level. They are the best media as far as school education is concerned, as far as primary and secondary education is concerned, but at the national level and at the university level, as far as possible, we must try to have one language. Let it be Hindi. In the south, there is some controversy about Hindi. I am permitting English there or regional languages there. My attitude to language is, rather than imposing one language and divide the country into two, I would prefer one country and two languages. That is the flexible attitude that I want to take on the question of language. This is what I would like to say. One minute more and I will conclude.

There is one more aspect to which I would like to draw the attention of the House, and that is as far as funds are concerned. Today, we find that in our country, if education is to be improved, if academic excellence is to be improved and especially the syllabi in scientific subjects are to be modernised in terms of experimental work as well as theoretical work, it is necessary that more expenditure will have to be incurred on research and development. Unfortunately in our country, only 0.5 per cent of our GNP is spent on research and development. This will have to be stepped up. If more research facilities are to be offered in the university life, that also has to be undertaken.

In the end, I will conclude by making one constructive proposal. We have an eminent physicist in our country, Prof. Bose. In collaboration with the famous physicist, **Albert**

[Prof. Madhu Dandavate]

Einstein, he had formulated the monumental theory of Einstein-Bose statistics. There are three important fields of statistics: Bottzman statistics, Bose-Einstein statistics and Fermi Dirac statistics. Prof. Bose, in collaboration with Einstein, has formulated a most formidable theory of statistics which goes in the name of Einstein-Bose statistics. This great physicist of India has completed 80 years of his life. And in the 80th year of his life, I would like that the University Grants Commission and the Government should go out of their way to honour the great physicist of our country and honour him by giving him a permanent professorship so that not only our country but the entire world will realise that such an eminent physicist of Indian origin will be respected not only by our country but by the countries all over the world. I am only taking advantage of this debate to make this proposal to the Minister so that a great physicist of the eminence of Prof. Bose will be rewarded. He does not expect that reward. Only we suggest that the honour must be bestowed on him. If all these suggestions are incorporated, the UGC report can be implemented more effectively and better integration of our accademic life can be brought about.

SHRI DINESH CHANDRA GOSWAMI (Gauhati): The University Grants Commission has a dual role to perform. It must act for the horizontal development as well as vertical development of education but the report does not give real insight into vertical development, though in the conclusion it makes a certain reference to it. I am not an educationist and therefore I approach this subject with a certain amount of nervousness. But as a person who has some connection with the younger generation, I think it necessary to express the views of the younger generation on education.

Education has two purposes to fulfil. The first limited purpose is to equip a man to earn his daily livelihood. But that is not the entire purpose; the broad purpose of education is to arm him so that he can make socio-economic changes in the society. The greatest need of the country today is to create an atmosphere in which the educated people, the younger generation can really make an effective participation in the socio-economic changes in the country.

If we look at the entire educational system we have to say, with regret, that it has not been possible to achieve this broad objective. Even in the first limited objective the educational system has failed. That is why our friend Mr. Das Munsi while this subject was being discussed last time casually commented that the educational system in the country should be scrapped for five years. It is a casual comment but that comment is coming from many young people because they are feeling in their heart of hearts that the present day education system has not been able to give them anything, and it is no use asking them to continue in their schools and colleges. There is deep rooted frustration throughout the country. There are many reasons. Uncertain future is one reason. While he is in the college or in the school, he does not see any bright future. The entire purpose of education is to take away frustration from the younger generation. In a successful system of education, a young man will approach the challenges of life not with frustration but with conviction.

If the present system has generated frustration after 26 years of its existence since Independence in this country, we must come to the conclusion that the education system has not been able to give to the students all it ought to give him. We have been talking of structural changes in education. Apart from the curriculum changes, and then changing it from 10 to 11

years or from 10 to 12 years, no fundamental change in the educational system has come.

We are saying today that our basic approach is secularism, democracy, socialism and so on. Do our text books give the real picture or true meaning of democracy or socialism or secularism? I had the opportunity to talk to many student gatherings and when they are asked: what is democracy, they say: it is the rule of the majority. If democracy was the rule of the majority obviously in this world Hitler was the greatest democrat. It is not the rule of majority. It is the development of human values where even the views of minority are to be given due weight.

MR. DEPUTY-SPEAKER: You can continue on the next occasion.

14.59-1|2 hrs.

COMMITTEE ON PRIVATE MEMBERS' BILLS AND RESOLUTIONS

THIRTY-THIRD REPORT

SHRI S. D. SOMASUNDARAM (Thanjavur): I beg to move:

"That this House agrees with the Thirty-third Report of the Committee on Private Members' Bills and Resolutions presented to the House on the 21st November, 1973."

MR. DEPUTY-SPEAKER: The question is:

"That this House agrees with the Thirty-third Report of the Committee on Private Members' Bills and Resolutions presented to the House on the 21st November, 1973."

The Motion was adopted

15 hrs.

RESOLUTION RE: ESTABLISHMENT OF CONVENTION WHEN GOVERNMENT SHOULD RESIGN—*contd.*

MR. DEPUTY-SPEAKER: We take up further consideration of the Resolution moved by Shri Shyamnandan Mishra. Shri Shyamnandan Mishra may continue his speech.

SHRI SHYAMNANDAN MISHRA (Begusarai): Mr. Deputy-Speaker, Sir, although it might sound paradoxical when I say that conditions in the country both dictate and deter such resolution, I consider it my duty to place such a resolution before the House for its acceptance. Why do I consider that the conditions in the country dictate paradoxical considerations? On the one hand there are conditions of widening and deepening poverty, mounting unemployment and increasing economic and social disparities which are making the national situation almost explosive and on the other hand we find that the political conditions in the country do not favour any optimistic assumptions that underlie my resolution. My resolution calls for a 7 per cent growth in national income and correspondingly it calls for increase in industrial and agricultural production. It also excepts that there would be increase in employment of a particular order and those who are below the poverty line would be getting a fairer deal. These are the basic points of my resolution. But I am also emphasising that the political conditions in the country do not seem to give us much hope and encouragement in the direction of my resolution. The political condition does not seem to be geared to growth and development or even to social justice and the atmosphere is now definitely hostile to planning. Therefore, we find that we are in a plan holiday, and this plan holiday has been continuing for quite some time—since 1966-67. When we are in the midst of a plan holiday, would it not appear somewhat fool hardy to suggest that our targets should be higher than they have been in the past? That is a question which is bound to be asked of me.

The real aspect of the present situation is that if these things that I have mentioned in my resolution are not fulfilled we shall and up in a way that